वर्जनाओं के बीच

[कविता-संग्रह]

मुरारीलाल 'बावरा'

भूमिका

विष्णु प्रभाकर

संजीव प्रकाशन

बीकानेर

☐ प्रकाशक
सजीव प्रकाशन,
धोबी धोरा, सूरसागर के पास,
बीकानेर

☐ प्रथम संस्करण जनवरी १९७९

☐ मूल्य तेरह रुपये

☐ मुद्रक
शिव प्रिंटिंग प्रेस,
बीकानेर

VARJANAON KE BEECH : Bulaki Das Bavara : Rs 13

भूमिका

'वजनाओ के बीच' काव्य-सग्रह की अधिकांश रचनाए पढ़ गया हू। मन को बहुत सन्तोष हुआ। कवि अपने प्रति ईमानदार है और अपने परिवेश के प्रति उत्तरदायित्व से परिचित है। लेकिन परिवेश से जुड़ कर भी उसकी कल्पना धूमिल नहीं हुयी है। उसके 'शब्दों' की अनमोल गठरिया में लय संगीत और भाव सभी कुछ है। उसकी अनुभूति तीव्र और दृष्टि व्यापक है। परन्तु वह केवल राजमहलों मे ही नहीं रमता रहता, समाज की निचली गहराइयों में उतर कर मेहनतकश इन्सानों के दर्द को भी सहलाता है। एक ओर वह नव निर्माण के लिए आह्वान करता है तो दूसरी ओर कयामत को चुनौती देने से भी नहीं चूकता। प्रश्न पर प्रश्न उठा कर पूछता है—

जिसकी प्रतिमा बन जाती है
क्या होता आकार वही ?
जो कि समर्पित हो न सका हो
क्या होता वह प्यार नहीं ?
सच की कितनी सीमाए हैं,
भला विवेचन कौन करे ?
कुछ अनची हे प्रश्न उभरते
जिनका शापन कौन करे ?

कवि की सूरजमुखी आस्था और फौलादी विश्वास आश्वस्त करते हैं तो उसका दर्द वेचन भी करता है—

माना कि मुड़ गई सलाखें,
माना टूट गई जंजीर
घेरों से कब मुक्त हुई रे,
अब भी अभिव्यक्ति की पीर

सरगम नहीं हुआ करता है, तारो के खिंच जाने से ।
वर्षा नही जरूरी होती, बादल के आजाने से ।।

वह पुकार उठता है—

जाग जाग जाग ए अवाम एक बार ।
ग्रंथियों को तोड, कर जुल्म पर प्रहार ।।

कवि की मुक्त कविताओं में गीतों से भी अधिक अनुभूति की तीव्रता और दर्द है। उनका प्रखर व्यंग्य कचोटता है। 'मरुधरा का कोना' शीर्षक वाली कविता की ये पंक्तियां इसका प्रमाण हैं —

ये वो अस्तबल है
जहा कि प्रताप ने
अपने चेतक को बाधा था
देखिये
ये वो स्थल है
जहा मीरा ने पाया था कृष्ण
ये वो जमीन है
जहा कभी जयमल पत्ता
तो कभी गोरा-बादल पदा हुए थे
हाडी का जौहर भी यहीं-कहीं हुआ होगा
कहते हैं
इतिहास दुहराता है
परतु यहा तो कुछ नहीं
सिवाय इसके कि
कुछ कर्जाय खेत
भूख से व्याकुल पशु
पानी की खोज म अनेको पक्षी
अपनी वीरानियत ढोते हैं
यहा कभी कभी नेता
अभिनेता बन
आते हैं और दे जाते हैं झांसों के पोटले
या कभी आते हैं पुलिस के अफसर

किसी डाकू की तफतीस का खुमार लिये
परन्तु हकीकत दर हकीकत
ये गाव ये जमीन
किन्हीं लावारिश लाशों की तरह
अब भी जिन्दा हैं
जिसका जिक्र करना भी
शायद गर कानूनी है
यह है मरुधरा का कोना।
कितना शुष्क कितना सलोना।

पा य पत्तिया—

यह पूछने पर
कि कौनसी टेब्लेटस लू
उन्होंने
चट से चिट फाडकर लिख दिया
अमुक-अमुक हीरे जवाहिरात।
कितने भले हैं वे ?
वरना
मेरी किस्मत में कहा थी ये दौलत ?

'जटिलता, उपचार', 'इमरजेंसी' तथा 'वह और हम' जैसी लघु रचनाएं विद्रोह की ज्वाला से भरी हैं पर विद्रोही कवि इस बात को भी अच्छी तरह जानता है कि—

आसो का तूफान उजाडा करता—
कितने चमनो को ?
पर बसन्त का मधुमय मेला
लगना उससे रुका कभी ?

इसीलिए वह युग प्रहरी को पुकारता है—

युग प्रहरी ! तुम अन्तरमन का
दीप सजोओ एक बार (तो)
स्वय सकडों दीप शिखाओं—
मे ज्योति जल जायेगी।

कवि का अदम्य विश्वास है कि—

दिन की कड़ी धूप म रह कर
जो मुस्काते आये,
वे रातों के अंधियारे से
बोलो कब घबराये ?

यही विश्वास इस सग्रह का मूलाधार है। लेकिन राजस्थान का निवासी अन्त में धरती की सौंधी ग"ध से भी हमारा परिचय कराता है। लावण्य और माधुय से ओत प्रोत राजस्थानी गीत मन को भाते हैं। वह रूप का चितेरा ही नही है अपने हक के लिये जीने की प्रेरणा भी देता है।

मै कवि नही हूँ समीक्षक भी नही हू। मात्र पाठक के नाते इन रचनाओं म डूबा हू, सचमुच डूबा हू। यही क्या कम सफलता है। कवि की अनुभूति ओज और माधुय ने यहा वहा के अटपटेपन को भी सरस बना दिया है। मैं कवि के भविष्य के प्रति आश्वस्त हू। मेरी हार्दिक शुभकामनाए उसे। उसकी विद्रोही वाणी सूरजमुखी आस्था के साथ जनमत को सदा अनुप्राणित करती रहे।

बीकानेर,
५ १ ७८

विष्णु प्रभाकर

मेरी ओर से

सहज ही में उत्प्रेरित करने वाली, इस दु साध्य विधा से मैं पिछले दो दशकों से भी अधिक समय से जुड़ा हूँ। अपने जीवन को भी ढग से जीने–जिलाने में, कविता ने मेरा अत्यधिक साथ दिया है। मेरे अग्रज कवियों ने अपनी तूलिका को, सत्य के निकट लाने के जो प्रयत्न किये या कि कर रहे हैं, उनका यथासम्भव लाभ उठाना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा है। यही कारण है कि मेरी काव्य-यात्रा में किसी प्रकार का भटकाव नहीं आ पाया है। किसी वाद विशेष के घेरे में बध कर मैंने कविता नहीं की। मुझे मुक्त रूप में अपनी बात कहने में एक नसर्गिक आनन्द आया है। यह बात अलग है कि मेरी कविता संघषरत पीढ़ी के अधिक निकट है।

वतमान समय में, यानि इस सक्रमण काल मे, जबकि कविता के क्षेत्र मे अनेक प्रकार की नारेबाजी चल रही है—उसके स्वरूप को निश्चित करने की अनेक गवेषणाए चल रही हैं—पाठक तक सीधी पहुच का सकट पहले भी था और अब भी है—ऐसी स्थिति मे धु धलकों का उठना स्वाभाविक ही है। दूसरे कवियों की तरह मैं भी इन सवालों से परिचित हू। परन्तु मेरी अवधारणा स्पष्ट है कि ये सब (धु धलके) अधिक समय तक टिक नहीं पायेंगे क्योंकि कविता स्वय मे सजनापेक्षी है। इसके परिणाम अस्पष्ट अवश्य होते हैं परन्तु वे दूरगामी हैं जिसे इनकारना धृष्टता होगी।

कविता बुद्धि विमास के विपरीत उस पक्ष को उजागर करती है जो जीवन के जीवन्त सघष का निरूपण करती हुई चिन्तन की घाटियों से गुजर कर कुछ ऐसे शाश्वत मूल्य प्रदान करती है जो मानव सस्कृति की धरोहर हों।

'वजनाओं के बीच' मेरा प्रथम काव्य-सकलन है जिसकी अधिकाश रचनाए पिछले एक दशक की हैं। कविताए, गीत, नई कविताए व राजस्थानी रचनाओं का क्रम काल क्रम के अनुसार न रख कर उन्हें उनकी भाव भूमि पर आधारित करके ही पक्तिबद्ध किया गया है ताकि पाठक को पढ़ने व समझने में सुलभता हो।

देरी से प्रकाश्य होने का कारण यहा आम बात है। आप इसका अन्दाजा मात्र मे व्यवसायिक लेखकों को छोड कर शेष दीगर साहित्यकारो की प्रकाश्य-क्षमता से लगा सकते हैं म भी उनमें से एक हू। भारतीय लेखकों की दुदशा तथा उनके लेखन के शोषण पर अनेक चर्चाए सामने आई हैं अच्छी बात है लेकिन मुश्किल यह है कि वे बेचारे, विपन्न होकर भी, किसी श्रम-जीवी वर्ग में नहीं आते। इसलिए उनकी बात विधान सभा या ससद मे कौन नेता उठाए ?

इस सकलन की भूमिका हिन्दी साहित्य के समृद्ध लेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने लिखी, उसके लिये मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ। 'वजनाओं के बीच' आपके हाथों तक पहुचाने म मेरे मित्र डा० मदनलाल 'साजन' दादा प्रोडक्टस का सम्पूर्ण हाथ है, मैं उसके स्नेह के प्रति उऋण नहीं हो सकता।

इस सकलन का मुखपृष्ठ मेरे लिये एक समस्या रही जिसका सहज ही मे हल निकाल सकने में मेरे मित्र श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' व मित्र कलाकार श्री रजन गौतम एव श्री के० राज ने सहयोग दिया और सकलन के अनुकूल आवरण पृष्ठ तैयार किया। मैं उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हू। उसी प्रकार मैं अपने मित्र श्री बी० एल० सोनी (शिव प्रिंटिंग प्रेस) का, जिन्होंने प्रूफ देखने मे मेरी मदद की, आभारी हू।

मेरी रचनाओं को स्तर तक पहुँचाने मे जिन जिन लोगो ने सहयोग दिया है उनको मैं कसे भुला सकूगा ? अन्त में, अपनी बात समेटते हुए इतनी अपेक्षा करूगा कि आप सबका (पाठक वर्ग का) स्नेह बना रहे।

इसी अपेक्षा क साथ,

—बावरा

बीकानेर
दिनाक १४ १ ७९

अनुक्रम

शब्दों की अनमोल गठरिया

शब्दो की अनमोल गठरिया ढोते मेरे गीत रे।
वो सपने साकार होरहे जिन्हे स्वरो से प्रीत रे॥

(१)

मन्द मन्द मुस्काती जाये, मावा भरी हवाए,
दुल्हन बनकर स्वागत करती, आठों पहर दिशाए,
ये वो तट हैं जिन्हें प्राप्त है सागर का सगीत रे।
वो सपने साकार होरहे जिन्हें स्वरो से प्रीत रे॥ शब्दों की

(२)

मधुर मधुर गुजन नियति का सुने कल्पना जागे,
आख-मिचौनी खेले लहरें, नये बिंब अनुरागे,
डूबे ज्यों आनन्द मे मस्ती, सुध-बुध खोये मीत रे।
वो सपने साकार होरहे जिन्हें स्वरो से प्रीत रे॥ शब्दो की

(३)

ये वो बासन्ती दामन कि फूलो की हर गध रूके,
अमृतमय धारा ऐसी कि पवत औ पाताल झुके,
लौ से लौ विकसित करते ये ऐसे पव पुनीत रे।
वो सपन साकार हो रहे जिन्हें स्वरा से प्रीत रे॥ शब्दों की

(४)

जीवन स कुछ प्यार इह पर मत्यु से तकरार नहीं,
एक साधना का रग है जा जीत नही हो हार नही
विरही म इनका दान ता मिलन-सुधा के मीत रे।
वो सपने साकार हो रहे, जिन्हें स्वरों स प्रीत रे॥ शब्दों की

(५)

जिस भाषा को ये सम्बल दें, उनका रूप मनोहर है,
विश्व प्रेम कल्याण सभी का करत गीत धरोहर है,

सूक्ष्म रूप से उस विराट तक पहुँचाये, ये रीत रे ।
वो सपने साकार हो रहे जिन्ह स्वरो से प्रीत रे ॥ —शब्दो की

(६)

सुख मे स्वर्णिम सपने हैं तो दु ख म आशाओं के घर,
दसों रसो के वाहक हैं ये जसे गागर मे सागर,
अनगढ इतिहासो को सम्बल देते ये प्रगीत रे ।
वो सपने साकार हो रहे जिन्ह स्वरो से प्रीत रे ॥ शब्दो की

(७)

युगो युगो के नायक बनकर, अलख जगाते ये आये,
सूरदास, तुलसी, मीरा की गरिमाओं क ये पाय
जिन्हे आस्था इन गीतो म व करते मन चीत रे ।
वो सपने साकार हो रह जिन्हें स्वरो से प्रीत रे ॥
शब्दो की अनमोल गठरिया ढोते मेरे गीत रे ।
वो सपने साकार हो रहे जिन्हे स्वरों से प्रीत रे ॥

तुम जीतो मैं हारुंगा

(१)

तुम जीतो मैं हारुंगा ।
मरने तक तुम्हें पुकारूंगा ॥

प्यासी धरती,
सोना मोती,
रो लेन पर—
यादें खोती,

कौन बात विस्तारूंगा—तुम जीतो—

(२)

सूनी गलिया,
फूली फलिया,
प्राण वायु पर—
कुछ रंग रलिया

कैसे प्यार सुनाऊंगा—तुम जीतो

(३)

चहल पहल है,
पाव अचल है,
पलक चिटकत—
मोड अनल है

कौन जख्म रखवाऊंगा—तुम जीतो—

(४)

उजली रातें,
चुप बरातें
मौसम के सिर—
उल्टी बातें,

किस किस को उपलाऊंगा—तुम जीतो—

परेशानियां,
मेहरबानियां,
माटी ऊपर—
गढ़ी जालियां

कैसे गले लगाऊंगा।

तुम जीतो मैं हारूंगा।
मरने तक तुम्हें पुकारूंगा॥

साझ कालिमा रहने दो

भोर लालिमा तुम लेलो, पर साझ-कालिमा रहने दो।

सपनो की सरिता मे पलती, सोन मछुरिया तुम लेलो,
हसती हुई लहर की, नव रस भरी गगरिया तुम लेलो,
तुम विकास की नभ-गगा के, दीप सजोती जाओ पर--
जीवन के अधियारे का मैं, दर्द सहू तो सहने दो।
भोर लालिमा तुम लेलो, पर साझ कालिमा रहने दो॥

फसलों का घूघट तुम खोलो, जब वरदाना की खेती हो,
मुस्कानें बरसो जब नियति मुक्त हस्त से देती हो,
फूलो की महक बहारा के घर, इतमिनान से रहे मगर--
मैं ग्रम-गरल के कडुव घूट पियू तो मुझको पीने दो।
भोर लालिमा तुम लेलो पर साझ कालिमा रहने दो॥

सपनो की बगिया मे गाती कोयलिया से प्यार करो
सुख के सावन मे निपजी, हरियाली अगीकार करो,
मानस-म थन से निकला ये अमृत कलश सब पीलो—
मैं गर वीरानों के आचल खोऊ, मुझको खोने दो।
भोर लालिमा तुम लेलो पर साझ कालिमा रहने दो॥

प्यार के पनघट पर आना की डार तुम्हारे हाथ सही
नई जिन्दगी नई राह, हर कदम तुम्हारे साथ सही,
तुम अपनी कश्ति किनारे रखना, तूफा गर घिर आए तो--
मै गर बीच भवर मे, बहता जाऊ मुझको बहने दो।
भोर लालिमा तुम लेलो, पर साझ कालिमा रहने दो॥

□

भोर की किरण तुझे बुला रही

ओ किसान जाग रे, मजूर नींद त्याग रे
देख भोर की किरण तुझे बुला रही।

शोषकों के शल शृङ्ग, चूर चूर हो रहे
जुल्म जाल की घटा के पाल दूर हो रहे,
पथ के शूल सब जले फूल की सुगंध पले,
राह मंजिलों के चरण को धुला रही।
ओ किसान जाग रे, मजूर नींद त्याग रे,
देख भोर की किरण तुझे बुला रही॥

म्राज के ग्र धेर की ये म्राखिरी हो सास है,
पीड़ितों के प्राण नई जिन्दगी की म्राश है,
तड़फन क दिन गये, युग-युगा के ऋण गये,
म्रतीत क थपेडा को घरा सुला रही ।
म्रो किसान जाग रे मजूर नीद त्याग रे
दख भोर की किरण तुझे बुला रही ।।

ह्रास वा य जीण पष्ठ कल तो बदल जायेगा,
नया सवरा लाली से भू-माग को मजायेगा,
रक्त वण क्षितिज माल रश्मि से गगन हो लाल,
उषा लाल चवर ले िनेश को डुला रही ।
म्रा किसान जाग र, मजूर नीद त्याग र,
देख भोर की किरग तुझे बुला रही ।

युग क पीड़िता का दस घरा प हागा राज र
उनके नीग पर रखेगी मा सुनहरा ताज रे,
नम तारा का हार ले सुरभि स्वर शृङ्गार ले,
मधुर तान सदियो की थकान को मिटा रही ।
म्रो किसान जाग रे मजूर नींद त्याग रे,
न्म भोर की किरण तुझे बुला रही ।।

खेत म्रो खलिहान तेरे फिर स लहलहाये ग,
कल मौर कारखान भी भूम भूम गाये ग
मा किसान बावरे म्रा मजूर मावरे
श्रम स सज स्वग द्वार को धरा सुना रही ।
म्रा किसान जाग रे, मजूर नीं त्याग रे
दम भोर की किरण तुझे बुना रही ।। □

अनुग्रह

अब दोपहरी ढल चुकी,
मन्द दृष्टि से निहारो मत मुझे।

जिस बड़प्पन के लिए अकुलाहटें हैं
आमरण व्रत धारने की चाहतें हैं
समय ने आवाज दी जिसके लिये—
साथ देने के लिये कुछ चाहतें हैं।
झुलस ठंडी होचुकी—
बन्द मत करना उजागर मय द्वारे।
अब दोपहरी ढल चुकी—
मन्द दृष्टि से निहारो मत मुझे॥

मुंह फेरना जिनके लिये अभिशाप है,
अपराध सायों से भले अनुताप हैं,
बहुत उजलो की सफेदी धुंध पर—
तर खिचावों में अभी सन्ताप है।
आस्था ग्राम्या बनी
तुम मुझे मत दूर से करना इशारे।
अब दोपहरी ढल चुकी—
मन्द दृष्टि स निहारो मत मुझे॥

□

कयामत सिर उठाये तो

कयामत सिर उठाये तो, हमें उसको कुचलना है ।
कि बोकर बीज शोलों के, हमें अग्नि उगलना है ॥

हम उद्धार करना है कि जिनकी आह भी एहसान,
कि जिनकी देह तीरथ है कि जिनकी सांस भी वरदान,
उठाना है उन्हें ऊषा जो जुल्मों से प्रताड़ित है—
हम देना उन्हें सम्बल, कि जिनके घुट रहे हैं प्राण
हजारों भापने लेकिन हमें आरोह करना है ।
कयामत सिर उठाये तो हमे उसको कुचलना है ॥
कि बोकर बीज शोलों के, हमें अग्नि उगलना है ॥

हम सकल्प लेना है, सोयो को जगाने का,
घिरे हैं जो ग्रमावा से, उन्ह सीने लगाने का,
डरेंगे कब तलक दोनो कि मुट्ठी भर सुलफियों से ?
कि पाया वक्त ग्रपने हौसलो को ग्राजमाने का—
न देखो भूल परछाईं हम ग्रागे निकलना है।
क्यामत सिर उठाये तो हमे उसको कुचलना है ॥
कि बोकर बीज शोलो के, हम ग्रग्नि उगलना है ॥

करोडो स्याह चहरो का हम करना है ग्रभिनन्दन
कि उनको ताज पहनाकर हम करना है ग्रभिवादन,
माटी की कसम हमको गढेंगे वो नया इतिहास—
कि जिसमे श्रम की हो पूजा श्रमिक को चाह वृन्दावन
यही इक बात है जिसके लिए जीना है मरना है।
कयामत सिर उठाय तो हम उसको कुचलना है ॥
कि बोकर बीज शोलो के हमे ग्रग्नि उगलना है ॥

मिलों म धान बुन कर जो फटी हालत म रहत हैं
मणो मण धान पदा कर जो दाने को तरसते हैं
यही गर एक सच्चाई लडाई लाजमी समझो—
मिटाना है उन्ह जो कि हमारा श्रम निगलते हैं।
इसी रद्दोबदल के वास्ते ग्रभियान करना है।
कयामत सिर उठाये तो हम उसको कुचलना है ॥
कि बोकर बीज शोलों के हमें ग्रग्नि उगलना है ॥

हमारा एक-एक ग्रक्षर जलायगा मशालों को,
कि जन-जन के दिलो में बठ दिखायेगा कमालो को
भरम को भेद देगे फिर हमारी चेतना के शर—
ग्रधेरा छाट कर सारा तराशेंगे उजालो को—
मगर गफलत से हमको हर तरह से बचके चलना है।
क्यामत सिर उठाये तो हम उसको कुचलना है ॥
कि बोकर बीज शोलो के हम ग्रग्नि उगलना है ॥ □

अनचीन्हे प्रश्न

कुछ अनचीन्हे प्रश्न उभरते,
जिनका मापन कौन करे ?
क्या है इच्छित क्या है वर्जित,
ये निर्वाचन कौन करे ?

जिसकी प्रतिमा बन जाती है,
क्या होता आकार वही ?
जो कि समर्पित हो न सका हो
क्या होता वह प्यार नहीं ?
मन की कितनी सीमाए हैं,
भला विवेचन कौन करे ?
कुछ अनचीन्हे प्रश्न उभरते,
जिनका मापन कौन करे ?

अनायास ही कभी तरंगित
होती है मन की धारा,
अनुसूचित हो इसस पहले
ढहता सवेन्दन सारा,
रह जाता जो पाठ अधूरा,
उसका वाचन कौन करे ?
कुछ अनचीन्हे प्रश्न उभरते
जिनका ज्ञापन कौन करे ?

जीवन के स्वर मिल न पायें,
फिर गायक क्यों गाता है ?
प्राप्य नहीं हो जो योगी को,
भोगी क्यों अकुलाता है ?
साध्य है क्या और साधन क्या है ?
मार्ग-दर्शन कौन करे ?
कुछ अनचीन्हे प्रश्न उभरते
जिनका ज्ञापन कौन करे ?

क्या सुख सुविधा उनकी निधि है
जो कि वैभवशाली है ?
अंतरिक्ष में होड़ लगी है
भूमि पर कंगाली है
अर्थ-हीनता हावी कैसे ?
मानस-मंथन कौन करे ?
कुछ अनचीन्हे प्रश्न उभरते,
जिनका ज्ञापन कौन करे ?

मुक्ति की क्या बात करें
जब सांसें भी उन्मुक्त न हों ?
मुझे बताओ कौन कर्म है
जो कि स्वार्थ-युक्त न हो ?
धर्म-कर्म की व्यवहारिकता--
का विश्लेषण कौन करे ?
कुछ अनचीन्हे प्रश्न उभरते
जिनका ज्ञापन कौन करे ?

क्या इच्छित है क्या है वर्जित ?
मानस-मंथन कौन करे ?
कुछ अनचीन्हे प्रश्न उभरते
जिनका ज्ञापन कौन करे ? □

उल्लास हमारा अपना है

धरती का उल्लास हमारा अपना है ।
दर्दों का इतिहास हमारा अपना है ॥

बहुत बड़ी कुर्बानी देकर,
हमने मंजिल पाई,
कितने ही संघर्ष किये,
तब सीता वापिस आई,
जौहर का आवास हमारा अपना है,
समता का आकाश हमारा अपना है,
धरती का उल्लास हमारा अपना है ।
दर्दों का इतिहास हमारा अपना है ॥

जन-जन म हो नई चेतना,
ये सकल्प हमारा,
अलख जगाने वालो म
भी नूतन निश्चय हमारा
नवयुग का मधुमास हमारा अपना है
सदियो का सत्रास हमारा अपना है
धरती का उल्लास हमारा अपना है ।
दर्दों का इतिहास हमारा अपना है ॥

कटी धुधलके की काराए
जडता टूटी रे
सूरजमुखी आस्था अपनी
कभी न छूटी रे
गीता का आभास हमारा अपना है
फौलादी विश्वास हमारा अपना है
धरती का उल्लास हमारा अपना है ।
दर्दों का इतिहास हमारा अपना है ॥

जिस माटी मे ज म लिया है
उसकी छटा निराली
कही भारती बन गू जे तो
कही दशमो वाली,
वेदो का विन्यास हमारा अपना है,
संघर्षी आभास हमारा अपना है,
धरती का उल्लास हमारा अपना है ।
दर्दों का इतिहास हमारा अपना है ॥ □

गीत

जब शब्द पत्थर से हुए आवाज कसे दू तुम्हें ?

उम्र ढोने के लिये
कुछ सांस की सौगात ले,
सुख सूखी रेत बठे,
चिन्ह से जज्बात ले
मैं जीया हूँ किस तरह ये राज कसे दू तुम्हें ?
जब शब्द पत्थर से हुए आवाज कसे दू तुम्हें ?

मौन हो कुछ बात हो,
वाचालता से क्षुब्ध हूं,
डर नहीं है सांझ का,
मैं भोर से विक्षुब्ध हूं,
बिफरते आकाश मे परवाज कैसे दू तुम्हें ?
जब शब्द पत्थर से हुए, आवाज कैसे दू तुम्हें ?

मैं वही हूं किन्तु मेरा,
वो नहीं चेहरा रहा,
दस्तकें पर दस्तकें थीं,
किन्तु मैं बहरा रहा,
दहकते माहौल का अन्दाज कैसे दू तुम्हे ?
जब शब्द पत्थर से हुए, आवाज कैसे दू तुम्हें ?

कौन जाने किस तरह मैं,
तय हुआ अब तक सफर
कौनसा वो आयना था
जिसका मैं था रहगुजर,
द्वन्द्व से व्याकुल समय का साज कैसे दू तुम्हे ?
जब शब्द पत्थर से हुए आवाज कैसे दू तुम्हें ?

प्यास से व्याकुल नदी के,
कुछ मुहाने पास हैं,
या समझलो मेरे जग का
अनकहा इतिहास है,
कल तो कल है, कल का क्या ? मैं आज कैसे दू तुम्हें ?
जब शब्द पत्थर से हुए आवाज कैसे दू तुम्हे ? □

वे भला क्या कर सकेंगे ?

जिन ग्रहातो मे खुशी का ही रहा वातावरन ।
वे भला क्या कर सकेंगे आसुओ का आचमन ?

जो सुरा की वेदिया से,
बाटते है दद को,
जो चहारो की गली म,
ढूढते हैं गद का,
जिन सफा पर साझ का होता नही है आगमन ।
वे भला क्या कर सकेंगे आसुओ का आचमन ?

पीर की गहराइयों म,
जो कभी डूबे नही,
जो हकीकत से परे,
रह कर कभी ऊबे नही,
कब हुआ है भस्तियों से आह का एकीकरन ।
वे भला क्या कर सकेंगे आसुओ का आचमन ?

द्वार पर जिनके सदा,
बजती रहीं शहनाइया,
पायलो की गोद म है
नूपरी अमराइया
वे क्या जानें वदना जिनका नही अत करन ।
वे भला क्या कर सकेंगे आसुओ का आचमन ?

फूल से करते मसक्कत,
और गदराते सदा,
मौन की करते ठिठोला,
और इतराते मगा,
एक अपने ग्रहम की ही, जो लिया करते शरन ।
वे भला क्या कर सकेंगे आसुओं का आचमन ? □

ये भी तो इन्सान हैं

जो भट्टो पर काम करें
जो इंजिन में आग भरें,
ये भी तो इंसान हैं ये भी तो इंसान हैं।

होटल मे कप-बस्ती धोन, लडके दिन उठ आते,
ये भारत के मुन्ने-मालिक पालिस मे ढल जाते
जो सबकी दुत्कार सहे
जिनकी पीडा गौण रहे,
ये भी तो इंसान हैं, ये भी तो इंसान है।

जान हथेली पर लेकर जो खम्भो पर चढ जात
याकि तगारी ढोते-ढोते जिनके तन गल जाते,
भूखे रह निर्माण करें,
मेहनत सुबह-शाम करें
ये भी तो इंसान हैं ये भी तो इंसान हैं।

जो कि सबका मैला ढोकर रोटी खाते बासी
उनसे नफरत करने वाले, जात काबा काशी,
जिनका त्याग महान है
जिनकी चाह जहान है,
ये भी तो इंसान हैं ये भी तो इंसान हैं। □

वो सैलाब आगया

जिसका इंतजार था वो सलाब आगया।

लुट गई हैवानियत जुल्म पस्त होगये,
दरिंदगी के तार सब तार-तार होगये,
प्यार की आई घड़ी माकि हुप छागया।
जिसका इंतजार था वो सलाब आगया॥

नवीन रास्ते खुले जाल सारे कट गये,
कट चुकी है बेड़िया खौफ सारे छट गये,
फिर नये उत्साह का जलजला समा गया।
जिसका इंतजार था वो सलाब आगया॥

छल कपट प्रपञ्च के महल सारे ढह गये
ज्वार कुछ ऐसा रहा जाने कितने बह गये,
खुल गये खुशी के द्वार नव प्रकाश आ गया।
जिसका इंतजार था वो सलाब आगया॥

कल तलक बन्दूक से जो खेलते आवाम से
खेलते थे सहर से जो खेलते थे शाम मे,
ये नया भूकम्प था जो कब्र तक को खागया।
जिसका इंतजार था, वो सलाब आगया॥ ◻

कोई कलश नही छलकेगा

कोई कलश नही छलकेगा घटी के बज जाने से ।
वर्षा नही जरूरी होती बादल के आजाने से ।।

तेरी मेरी कौन सुनेगा
यहा नगारों की है होड,
यहा अहम की चकाचौंध मे
चरांता सा हरइक मोड,
रुधा गला कब खुल पाता है कोलाहल मच जाने से ?
वर्षा नही जरूरी होती बादल के आजाने से ।।

अवसादो की भीड़–भाड़ मे,
विपदाग्रो की घाम तले,
कौन मिलन की बात बटोही
भटकावो की दाह छले ?
कोई भवन नही बनता है, माटी के गल जाने से ।
वर्षा नही जरूरी होती बादल के ग्राजाने से ॥

माना की मुड़ गई सलाखे,
माना टूट गई जजीर,
घेरो से कब मुक्त हुई रे,
ग्रब भी ग्रभिव्यक्ति की पीर,
सरगम नही हुग्रा करता है, तारों के खिच जाने से ।
वर्षा नही जरूरी होती बादल के ग्राजाने से ॥

नये–नये ग्रध्याय खुले हैं
पुस्तक की किसको परवाह
मिले नही ग्रक्षर से ग्रक्षर,
तो भाषा का कहा टिकाव ?
कोई चित्र नही बनता है रगो के घुल जाने से ।
वर्षा नही जरूरी होती, बादल के ग्राजाने से ॥
कोई कलश नही छलकेगा, घटी के बज जाने से ।
वर्षा नही जरूरी होती बादल के ग्राजाने से ॥ □

जाग ! जाग !! जाग !!!

जाग जाग जाग ए अवाम एक बार ।
ग्रन्थियों को तोड, कर जुल्म पर प्रहार ॥

मजबूरियों के मापदण्ड तोड करके उठ
मुगालतो के मूल को झकझोर करके उठ,
साजिश भरी हर बात का दम तोड करके उठ
बेकसों को राह को तेरा इन्तजार ।
जाग जाग जाग ए अवाम एक बार ॥

तू उठा तो वामनी हर पांव उठेगा,
तू उठा तो शहर और गाव उठेगा,
जमी तो क्या समूचा आसमान उठेगा,
आग का दरिया है तू फिर उठा मगार।
जाग जाग जाग ए अवाम एक बार॥

सोये हुए इस देश की तस्वीर बनाले,
वीरान चेहरा की नई तदबीर बनाले,
अनगढे इतिहास की तामीर बनाले,
तेरे हौसलो पर है सबको ऐतबार।
जाग जाग जाग ए अवाम एक बार॥

लाचार पीडितो का इक वरदान तू ही है
जालशाले की सुबह और शाम तू ही है,
भूख के मारा का इक भगवान तू ही है,
एक बार सावधान हो जा होशियार।
जाग जाग जाग ए अवाम एक बार॥

अर्थी उठा दे राख की गोलो को हवा दे
नवीन चेतना को नई आबोहवा दे
महलों के शीश झोंपडी के आगे नवा दे,
बदल के रख सडा समाज जिसके सब शिकार।
जाग जाग जाग ए अवाम एक बार॥

ग्रन्थियों को तोड, कर जुल्म पर प्रहार।
जाग जाग जाग ए अवाम एक बार॥ □

अनुभूतियो के क्षण

इन गलियो के पास बगल में
कहीं कहीं लगे पेडो के स्थित घोसलों पर
जब कोई तूफान
मेहमान बन कर आता है,
मुझे दर्द होता है।

× × ×

जब कभी
रात के अधेरे म
चमकते हुए सितारो के बीच
कुछ हवा की लहरिया नाचती हैं
मेरी दृष्टि
गुजरी हुई यादो का कमानी चश्मा पहनती है।

× × ×

धूप के प्रबल ताप मे
पसीने से भीगी अनेक शक्ले
अपनी जि॰गी को अस्तित्वहीन देखती हैं
मेरी व्यथा कराहती है।

× × ×

आजाद देश की सीमाओ का
जब कोई आक्रामक
अपना महज धर्म मानकर—
अधिकारता है
मेरा पौरुष मुझे ललकारता है।

× × ×

जब किसी
चलती नव-यौवना ललना पर
कुछ बदचलन लोग
अनधिकृत व्यवहार करते हैं
और मै
किंकर्तव्य विमूढ होकर देखता हूँ
मेरा नाटापन मुझे धिक्कारता है। □

अजीब यथार्थ

हमारी उपलब्धियों में क्षण
सहूलियत के किलों में कैद हैं
सौंधी सुगन्ध पर
परेड करती हुई बारूदी हवा—

मत्युञ्जय की उपाधि से अलंकृत
हमारी अहिंसक आस्था की अंगीठी पर—
जमती जारही है मौसम की ठंड
हमारा ज्ञान—
विज्ञापनों की चहल कदमी से त्रस्त
फैशन परस्ती की मखमल में
झांक रही है राजनीति
कुछ उसे देखते हैं
कुछ उसकी टोह में खुनियों के आलू उबालते हैं
हमारे पारस्परिक सम्बन्ध
बालू के टीबों से
हमारी मान्यताएं
कांदा के छिलकों सी
ओढ़ती हैं नित नई व्यवस्थाएं
हमारे अधिकारों की व्याख्या
चोटी के इकरारनामों से पूर्ण
करते हैं नये सामन्त
हमारे व्यवहारों में
एक अजीब उदासी छाई है
एक अजीब घुटन समाई है
हम उससे जूझते भी हैं—
तो पूजते भी हैं
और इधर
समस्याओं को बेचने वाले बाजीगर
साझेदारी के सांप पालते हैं
और हम—
परेशानी से बचने के लिये
चूहे समाजते हैं। □

मरूधरा का कोना

ये है मरूधरा का कोना
कितना शुष्क कितना सलौना
इसकी धूल-धूसरित वक्षस्थल की धड़कन को
किसी आजादी ने नही सुना
सर्दी मे सद
गर्मी म गम
इसमें बसा करते हैं गाव
लगड़े-लगड़े जिनके पाव
जिनके घर-आगनो म दीवाली को छोड़
कभी भी दीपक नही जले--
निरकुश अधियार का
घुटन के सपेनो का
साम्राज्य है सदियो से
अकाल से ग्रस्त आकृतिया
अपना और अपने परिवार का बोझा ढोने मे व्यस्त
कि जिनकी खुशहाली कर्जो से त्रस्त
इन्हें शायद ही मालूम हो
कि इस जिन्दगी म
रोटी के सिवा कोई और भी मसला होता है
इनकी दृष्टि क आखरी छोर तक
केवल अध
काला पीला मटमैला
चलता है बारोमास
अधनगी देहो पर जमी हुई परतो को
कोई सावन कभी कभी धोता है
इन्हें सिखाया गया है अपने
पूवजों का वो गौरव
जिसकी विरदावली गाते थकके ये लोग
दिखाई देते हैं इस तरह
जसे इनमें नही
इनकी परछाइयो म जान हो ।

× × ×

ये वो अस्तबल है

जहां कि प्रताप ने
अपने चेतक को बाधा था
देखिये
ये वो स्थल है
जहा मीरा ने पाया था कृष्ण
ये वो जमीन है
जहा कभी जयमल-पत्ता
तो कभी गोरा-बादल पैदा हुए थे
हाडी का जौहर भी यहीं-कहीं हुआ होगा
कहते हैं
इतिहास दुहराता है
परन्तु यहा तो कुछ नही
सिवाय इसके कि
कुछ बजाये खेत
भूख से व्याकुल पशु
पानी की खोज म अनेको पक्षी
अपनी वीरानियत ढोते हैं
यहा
कभी-कभी नेता
अभिनेता बन
आते हैं, और दे जाते हैं, भाषों के पोटले
या कभी आते हैं पुलिस के अफसर
किसी डाकू की तफ्तीश का खुमार लिये
परन्तु हकीकत दर हकीकत
ये गाव ये जमान
ये लोग
कि ो लावारिस लाशों की तरह
अब भी जिन्दा हैं
जिनका जिक्र करना भी
शायद गैर कानूनी है
यह है मरुधरा का कोना।
कितना सुन्दर कितना सलौना॥

इमरजेंसी

उन्होंने
मेरे गले में—
टाइमो बम का एक तावीज' लटका दिया है
इस निर्देश के साथ
कि यह तुम्हारी सुरक्षा करेगा
और यह आदेश भी दिया है
कि इसे
समय की समाप्ति के पूर्व मत खोलना
वरना
ये अपना पर्चा नहीं दे पाएगा
अब यह मुझ पर है कि मैं
इसे रखूं या तोड़ फेंकूं———

वह और हम

'वह'
बारबार कहता रहा 'मैं भगवान हूं'
और 'हम'
और हम बारबार कहते रहे—
'तुम शैतान हो'
मगर
क्या बात थी
कि हम
नकारते हुए भी उसे स्वीकारते रहे
मसलन
उसने उल्टियां कीं
हमने कटोरे भर लिये
उसकी खर्राहटों की पहरेदारी में
हम बराबर जागते रहे
उसने कोड़ा उठाया
हमने पीठ दी
इतना ही नहीं
उसकी बड़बड़ाहटों पर हमने संहिताएं रचीं
नतीजा ये हुआ
कि वह
'शैतान' से भी 'भगवान' होगया
और हम
'भगवान से भी शैतान होगये।

उपचार

उन्होंने मेरा सिर सोने के हथौड़े से
टांच दिया है
और
पाटी की जगह थमा दी है चांदी की झालर
यह पूछने पर
कि कौनसी टेब्लेटस लूं
उन्होंने
चट से चिट फाड़कर लिख दिया
अमुक-अमुक हीरे जवाहिरात
कितने भले हैं वे ?
वरना
मेरी किस्मत में कहां थी ये दौलत ?

जटिलता

बेतहाशा भागती हुई भीड़ की रफ्तार को रोकना
शायद
उतना मुश्किल नहीं
कि जितना मुश्किल है
मोड़ना
उस डूबती किरण को
जिसके दामन में
आग है
दाग नहीं।

आत्म-समर्पण

आओ
एक बार फिर
हमारा सारा साजो-सामान
सामने की नदी में फेंक दें और पुल बनाएं
और
खड़े रहें तब तक
जब तक उस पार बैठा सूरज—

रोशनी के तस्कर

कितने भले है य लोग
इनके भले कामो को रोकने के लिये
न तो कोई कानून ही बने
न ही ईजाद हुई मर्यादाए
जानते हो ये कौन हैं ?
ये हैं रोशनी के तस्कर
बुद्धिजीवियो का जामा पहने
शराफत के लिबास ओढे
समाज की मा यताओं की ऊपरी सतह पर बैठे
करते हैं हराफेरी ! रोशनी की हेराफेरी !!
इनके बुद्धि-विलास के साधन
जुटाता रहा है हर देश का निजाम
इनकी हिफाजत करती हैं बूढ़ी मा यताए
इनकी वकालत करती आई है हरएक बीमार पीढ़ी
जो कि मरने से पूव
छोड जाती है वसीयत इनके नाम
इनकी सीमाए व्याप्त हैं
विश्व क इस सिरे से उस सिरे तक
इनकी धाक
न्यूयाक से मास्को तक
हागकांग से बर्लिन तक
पेरिस से दिल्ली तक मुखर है
सुना है
अब तो इनके अड्डे अ तरिक्ष तक में खुले हैं
जहा से ये
इधर की रोशनी उधर

मोर उधर की रोशनी इधर
बड़ी मुस्तैदी से करते हैं
इनके सामने हाजी मस्तान, बखिया भादि कुछ नहीं
उन्हें तो यहा की सरकार ने भकारण ही जेल दी थी
उनके घरों में इनकी तरह
समूचे विश्व को नाप लेने क राडार नही थे
रोशनी के तस्करों की तरह
उन तस्करों के पास वो बुलडोजर नहीं थे
जो किसी भी साहित्य पर भनायास ही चल जाते हैं
इनकी जेब म
न्यूयाक टाइम्स, लन्दन टाइम्स, मोर्निंग स्टार
या भल भहराम नहीं थे
जो गांधी-गोडस को एक बता देते
जुडा-ईसा को सामान जता देते
उनका भसर हुमा करता है सभ्यता पर
तो इनका समूची सस्कृति पर
उन्होंने धन पाला है
इन्होंन रोशनी
वे जेल जात हैं
ये मौजियात हैं
बडे-बडे प्रकाशनों की एजेन्सियां रखते हैं ये
प्रगतिशीलता का कन्तर बढ़ाते हैं ये
विमान का टोपा सटाते हैं ये
इन्हें सलाम कीजिए
इनसे लाइस स लीजिए
फिर देखिये
चन्द दिनों म भाप भी
होजावेंगे तस्कर
उस रोशनी क—
जिससे सूय घबराता है!
चांद शरमाता है!!

तथाकथित साहित्य

हमें ऐसा दर्पण चाहिये
कि जिसमे
समाज की गतिविधियों के सभी चित्र
दीख सकें यथावत
ऐसा दर्पण
काच का नही
पानी का नही
सभव
साहित्य का हो सकता है
हमारा तथाकथित आधुनिक साहित्य
एक बिगडे दिल शहजादे की बस सा
जिसकी सीटों पर
वयक्तिक व्याख्याओं के बडल धर आसीन हैं
इसका कण्डक्टर कोई समीक्षक नही
लॉटरियों का एजेण्ट है
बस चालक
पूजीवादी परम्परा का पट्टेदार है
इसका नवीनतम इग्लिशमेड इजिन
इस बात का प्रतीक है
कि इसम अन्तर्राष्ट्रीयता की शख्सियत है
चक्को की जगह ले रखी है वादों ने
जो
अनाप-शनाप आपाधापी के चक्र हैं
कि इस बस का आवागमन—
भाटनगर स भ्रातिनगर तक होता है
इसके पीछे की प्लेट पर 'हान प्लीज' की जगह
लिखा है 'बान प्लीज
अस्तु, आप भी आइय
और अपने आपको प्रगटाइये ।

एक खत (मा के नाम)

ऐ मां,

प्रणाम—

शतशत प्रणाम।

हो चुका है अन्त
तुम्हारे सम्मान का अकल्पनीय शृङ्गार
उन मादक फूलों द्वारा
जो कि अभी तक शोक में व्यस्त हैं तुम्हारी क्यारियां
जिन पर कि तुम आसीन हुई थीं कभी
लेकिन अब
मेरी दृष्टि में इन सबका कोई महत्व नहीं
इसलिए
कि तुम्हारे ममत्व की पराकाष्ठा को समेटे थे

करने लगे है भ्रूण हत्याए
उन अनागतों की जो आने को हैं
(इसलिये कि तुमने छूट दे रखी है इन्हें
वो सभी कुछ करने
जो कि
अनापक्षित है)
आज फिर आगया है फसले का दिन
समूची युग-पीडाओं को समेटे आया हू तुम्हारे पास
आशीर्वाद लेने नहीं
बल्कि यह जताने
कि तुम ये सभी कुछ देख कर भी
चुप क्यो हो ! चुप क्यों हो !!
ऐ मा—
मुझे तुम पर नहीं
तुम्हारी एकतरफी दृष्टि पर क्षोभ होता है।

× × ×

ऐ मा — —
जब मेरा अस्तित्व
नकारता है उन सब भाव-हीन चेहरों को
जिन्होंने अपनी नासमझी को ढाप रखा है
तुम्हारे नाम की गरिमा की उस बेदाग चादर से
जो कि तुमने
इन्सानियत की रक्षा हेतु दी थी कभी
जब तक मैं
अपनी विवशताओं के वशीभूत हो चुप था
जानती हो इन्होने !
क्या किया इन्होने !!
मेरी मजबूरी का नाजायज फायदा उठा
मेरे मुख पर
किस्म-किस्म के मुखौटे लगाये
ताकि मैं दिग्भ्रांत होजाऊ

और ये
कर सकें मन चाही
परन्तु अब
जबकि मैं असलियत जान गया हूं
बर्दाश्त नहीं कर सकता वो सब कुछ
जो ये करना चाहते हैं
इसलिए इस समूचे नाटक में से मैं
अपने उस अहं पात्र को (जो कि पतन के अतिरिक्त कुछ नहीं)
करना चाहता हूं निष्कासित
क्योंकि मैं जान चुका हूं यथार्थ
जो कि
आयनाकार हो समुपस्थित है मेरे सामने
और दूसरी ओर वे
तुम्हारी अगुनाई के सारे हथियारों को थाम
क्षमताओं के सारे औजारों से लैस
तुम्हारी आकांक्षा के आकार को भोंडा कर
होचुके हैं मदांध
और
चल हैं जंग छेड़ने उन लोगों के खिलाफ
जो तुम्हारे इंगन मात्र से देते रहे हैं सर्वस्व
इसलिए ऐ मां
मुझसे अब य सब देखा नहीं जाता
अतः—
ले चुका संकल्प
उन सब निरीह लोगों को बचाने का
ताकि
अनागत पीढ़ी को मौत के अन्तर है
अच्छा मां ! विदा—अलविदा
विदा लो तुम्हारा
रहा ना माटी का।

——— तुम्हारा

विधवाओं के प्रति

उस समाज को आग लगादो
जहं जीवित जलती है नारी।
मानवता के नये सृजन हित
भड़कादो शोले चिनगारी॥
अभी-अभी कुछ समय पूर्व जब,
धम-कर्म की रेखा पाली जाती थी,
पतिव्रत के नाम सैकड़ों पति-हीनों की
देह ढाली जाती थी
जो लकीर के थे फकीर
वे फलाते इस महामारी को,
जो पति के संग जल जाती
(बस) सती समझते उस नारी को,
जीवित दाह किये नारी को,
देते सतियों का खिताब,
इस समाज के मदिरालय में,
दी जाती जहरी शराब,
जिसे पिला मदमस्त दानवी
वेखटके से सोती थी,
जीवन की जलती ज्वाला में
इधर मानवी रोती थी,

उनका ताण्डव नृत्य देख,
यमराज स्वयं थर्राता था,
जुल्म परस्तों के हाथों से
इनका जीवन जाता था,
पवन चक्रमय परिवर्तन से,
सती-प्रथा का अन्त हुआ,
बर्बर जीवित जल जाने की,
करुण-कथा का अन्त हुआ,
पर आर्त्तनाद है शेष अभी तक,
श्मशानों पर जली चिताएं,
शोक ! अभी तक घर गृहस्थी में
जीवित जलती हैं बालाएं,
प्रगतिवादी युग में साथी
जो रुकने करता तयारी,
उस समाज को आग लगादो,
जहं जीवित जलती है नारी,

इन आंखों से एक नहीं,
कई दीपिकाएं जलती देखा है,
सुहागहीन कई बेवाओं को
नरक तुल्य पलती देखा है
दग्ध हृदय दुर्बल नारी की
देखा खड़ी कतारों को,
जब रोक न पाया मैं उनको,
यूं लुटती हुई बहारों को
तो कलम दुखा अपने अश्रु
मैं लिखता करुण कहानी को,
रुद्ध कण्ठ से सुन रहा,
नारी की जली जवानी को,
कुछ यौवन का प्रतिकार बनी,
कुछ बाल विवाहों की शिकार,
अभिशाप लिये जीती नारी,

जग है मानो कारागार,
जिनका सुख-शृङ्गार लुटा,
वे म्लान खड़ी है विधवाए
वे एक नही है अरे !
सकड़ों की टोली मे बेवाए,
सिन्दूर-हीन जिनकी मागे
कगन और चूड़ी हाथ नहीं,
माथे स बिन्दी रूठ गई
पग पायल के अब साथ नहीं,
बुझते जीवन दीपों के सग,
इनका लाड दुलार गया,
बिछुड़े जीवन साथी के सग
सपनो का ससार गया,
निशिदिन पति प्रतीक्षा में
जो आखें करती थी निहार,
वे आज व्यथा मुदी हुई
बहती है जिनसे अश्रुधार,
विधि की विडम्बना कहू इसे
या कहू जाति की ठेकेदारी,
उस समाज को आग लगादो,
जहृ जीवित जलती है नारी,

देख सुबह जल्दो उठती,
करती सारा काम अरे !
जीवन म जिसने सुना नहीं
क्या होता है आराम अरे,
चूल्हा-चक्की पानी भरना,
सीना और पिरोना साथी,
इसी क्रम मे लीन हुई है
जीवन एक खिलौना साथी
किसी काम म भूल होगई
हो गर जाने अनजाने,

नागिन सी फुफकार लिये,
तब सास सुना देती है ताने,
कहती है क्यों भूल हुई ?
क्या कभी भूलती रोटी खाना,
छिपा नहीं है सास-ननद का,
ताने देना रंग जमाना,
नीची गर्दन किये हुए
विष-तुल्य ताड़ना पीजाती है,
फिर समाज के कुनियमों से
कठिन परीक्षा ली जाती है,
स्वच्छ वस्त्र पहन गर वो लो,
दोष दिखाई जाती है,
उसकी सेवा मालाएं तो,
ढोंग दिखाई जाती है,
शुभ काम कहीं जाते क्षण में,
दिख जाय कोई बेवा नारी,
अपशकुन मानकर राह बदलते,
देते हैं मैंने सखारी,
घर में दूर रखा जाता
बच्चों को उसकी छाया से,
और पड़ोसी बाहर कितने,
नफरत करते काया से,
यह सही हैं सभी यातना,
सिसक रही विधवाएं सारी।
इस समाज का घाग सगादो,
बंद जीवित जलती है नारी।

इस तरह मैंकड़ों विधवाओं की,
होती है फिजवाड़ यहां,
बेवा को हर एक बात का,
होता दिल का ताड़ यहां।
मैं पूछ रहा हूं तुम सबसे,

क्या विधवाओं ने पाप किया है ?
किस कारण इन अबलाओं का
जीना भी अभिशाप हुआ है ?
एक तरफ तो एक मर्द
हो विधुर किया करता है शादी,
इधर सकड़ों मानवियों की,
छीनी जाती है आजादी,
कितने मात-पिता देखे,
जो सज्जनता का चोगा पहने,
रक्षा भार लिये भक्षक जो,
हड़प रहे बेटी के गहने,
धन-लिप्सा हित शमनाक से,
साधन यहां जुटाते हैं
सरे-आम विधवा बेटी का,
जीवन यहां मिटाते हैं,
इससे भी कुछ अधिक पाप,
जो वर्णन से रहे परे,
क्या समाज के इस चेहरे पर,
हम सबको है नाज अरे ?
इस समाज के उलजलूल
नियमों को शीघ्र मोड़ना होगा,
बाड़ खेत को खाती हो तो
फौरन उसे तोड़ना होगा,
थोथे बन्धन छोड़ साथियो
आज मिटादो ये मक्कारी।
उस समाज को आग लगादो,
जहां जीवित जलती है नारी ॥

ये उन कलियों की गाथा
जिनको मिलता मधुमास नहीं
पतझड़ की वीरानी में अब
जिन्हें अलि की आस नहीं,

तमसाकार ओढ़नी ओढ़े,
धवल निशा के बीच निदाए,
अधकारमय जीवन म जो,
खोज रही है पुन दिशाए,
डूब चुका है भाग्य भास्कर,
दुर्गम पथ है शूल बिछाए,
जर्जर तन है रात भयकर,
प्रबल पवन भी राह भुलाए,
जिनके जीवन म सार नहीं,
जिनको मिलती पतवार नहीं,
मझधार चली ये नौकाए
जिनका कोई खेवनहार नहीं,
झझा के प्रबल झकोरों से,
जो टकराती तूफानों से,
कब डूब जाय कुछ पता नहीं,
लहरों के तीखे बाणों से,
इस समाज के सागर में,
डग-मग नौकाए डोल रही है,
लहरों सग मझधार अब
गुमनाम कश्तियां डोल रही है
क्या शोषित जीवन म इनको,
कभी किनारा मिल पाएगा ?
मिटी मांग पर सूरज का
सिन्दूर सहारा मिल पाएगा ?
नारियों की पतझरी जिन्दगी
की हम पर है जिम्मेदारी।
इस समाज को जाग जगादो,
यह आखिर अपनी है नारी ॥

□

युग प्रहरी

युग प्रहरी ! तुम अन्तरमन का दीप सजालो एक बार,
तो स्वयं सैकड़ों दीप शिखाओं में ज्योति जल जाएगी।
माना कि मजबूत बहुत है
मजबूरी के हाथ मगर—
क्या कोटि-कोटि वरदानों से
लड़ने की उसमें है क्षमता ?
आफत की आंधी का भी,
अभियान प्रबल माना लेकिन—
क्या अडिग इरादों के शिखरों पर,
उसका पांव कभी जमता ?
गहन खाइयां लाचारी की,
मुंह खोले बैठी रहतीं पर—
अमिट चाह की राह रुकी है—
अरे कभी उसके डर से ?
तुम शोलों से शूलों पर यदि
कदम बढ़ाओ एक बार,
तो तड़ित जिन्दगी की सांसों को—
नई राह मिल जाएगी
युग प्रहरी ! तुम अन्तरमन का

दीप सजोग्रो एक बार (तो)
स्वय सैंकडो दीप शिखाग्रो—
म ज्योति जल जायेगी ।

जुल्मों का ज्वार उठाया करती—
(हैं) लहरे निशिदिन किंतु
क्या रोक सकी हैं कभी कूल की सीमाए ?
बदनियत घटाए पोते आई—
कालिख नभ की चादर पर,
क्या मिट पाई कभी—
थक में पलीं नील-निधि आभाए ?
भय भूकम्प किया करता है
कम्पित भूमि का तन पर,
इसकी निभय धड़कन की गति—
चलती आई है अविरल,
तुम सघर्षों के सागर का
मझधार चीर दो एक बार !
कमजोर कश्तियो के उर में—
इक नई प्राण फल जाएगी।
युग प्रहरी ! तुम अन्तरमन का
दीप सजोग्रो एक बार,
तो स्वय सकडो दीप शिखाग्रों
(मे) ज्योति जल जाएगी ।

माना कि दुख का दावानल,
(भी) जला रहा मन मधुवन को,
पर क्षणिक दाह से क्या विकास का—
बीज समूचा मिटा कभी ?
श्रामों का तूफान उजाड़ा करता—
कितने चमनों को ?
पर बसत का मधुमय मला—
सपना उसने रुका कभी ?

पीड़ शिशिर की बाह माना,
जकड़ रही हैं दूर घर को,
पर आशा के अमर प्राण का—
पाल नहीं गलता उसस—
तुम उदयासन पर एक बार
आसीन अगर होजाओ तो
तम तपित सकडों धूलि कणो की—
क्रूर रात ढल जाएगी ।
युग प्रहरी ! तुम अ तरमन का
दीप सजोओ एक बार (तो)
स्वय सैकडों दीप शिखाओ म ज्योति जल जाएगी ।

भ्रात भावना का टिड्डी दल,
लूट रहा है नई फसल,
नई हूक का ताल लिये—
नव रूप सजा निज आगन का ।
नूतनता के नव कढाव पर
फैल रही है महमारी,
पर मुझे बताओ बिगड सका—
(क्या) चिर उपजाऊ आगन का ?
मायूसी की मरुस्थली माना कि
रोके नई कुमुक (पर)
सजल निझरी तो सदव—
मालिन सी बोती नव अकुर,
तुम युग प्रवाह की धारा को,
गर नया नाद दो एक बार ।
तो सुप्त सकडों रागिनियो की,
पायल रुन झुन गाएगी ।
युग प्रहरी ! तुम अ तरमन का
दीप संजोओ एक बार
तो स्वय सैकडो दीप शिखाओं
(में) ज्योति जल जाएगी । □

कैसे साथ निभेगा सजनी?

कैसे साथ निभेगा सजनी,
मैं सगत में पिछुड गया हू?

किस विधि तुम्हें गवारा होगी
मेरे पागलपन की घडिया ?
तेरी सांसो की वीणा को
स्वर देगी क्या कल्पित कडियां ?
मेरे उथले मन की डोरी
डोर बने कैसे जीवन की ?
सदा तुम्हें देता आया हूं
वरदानों मे अश्रु लडियां,
दीन भाव से मुझे न देखो
दूर नहीं, पर बिछुड गया हू।——कैसे साथ निभेगा सजनी?

आज नही तो कल सोचा था,
अपनी सीमा पाजाऊंगा,

कोंपल होकर प्रेम वक्ष की,
बेल बनूंगा छा जाऊंगा,
किंतु उम्र ने इतनी उल्टी,
परिभाषाएं मुझको दी कि—
अर्थ हीन विक्षिप्त घृण सा—
उनसे क्या कुछ मैं पाऊंगा ?
मैं पतझर का पशु-पल्लव
एकाकी सा सिकुड़ गया हूँ ।...... कैसे साथ निभेगा सजनी ?

मन पर काबू पा लेता तो,
इन होठों को सी लेता मैं ।
मेहनतकश मजदूरों भांति,
अपना जीवन जी लेता मैं ।
कम-घम को सोच समझ कर,
अपनी चादर तानी होती,
गम की सारी कड़ुवाहट को,
औरों भांति पी लेता मैं,
परिवर्तन के वक्र फेर से—
मोड़ा था अब बिगड़ गया हूं ।...... कैसे साथ निभेगा सजनी ?

शिकवा और शिकायत किससे,
निराकरण जब पास नहीं है ।
स्वार्थ भरे व्यवहारी जग में,
सच्चाई का वास नहीं है ।।
कुछ मतलब है इस धरती से,
जिसके आंचल में खोया हूं—
नई सूझ के बड़े कदम पर,
मुझको तो विश्वास नहीं है,
दुःख इतना है प्राण प्रेयसि—
अपने हाथों उजड़ गया हूं ।
कैसे साथ निभेगा सजनी,
मैं सगत म पिछड़ गया हूं ? □

उत्तर नहीं है

जिस तरह तुम प्रश्न बन कर जी रही हो ?
जानकर भी पास मे, वैसा अभी उत्तर नहीं है ।।

युग को जिलाने के लिये,
जब तब हुई हो याचिका मैं जानता हू ।
मानवी कमजोरियां
जो कि मैंने दी तुम्हें वे मानता हू,
दर्द की हर टीस बोने के लिये—
सम्बल लिया विश्वास का,
मैं उजाले छोर से—
हर महक को विस्तारता हू ।
भटकते परिवेश मुझको हेरते हैं जिस ठिकाने—
कैसे रहू म ? पास नव अनुमान की चादर नहीं है ।
जिस तरह तुम प्रश्न बन कर जीरही हो—
जान कर भी पास मे वसा अभी उत्तर नहीं है ।।

जगमगाती जिन्दगी मे,
जो दुआ करते सितारे,
वो भला क्या हो सके विस्तार के ?
लक्ष्य से गाफिल जगत के नीड में,
घूमते हैं पक्ष सदा अंधियारे के ।।
सस्वर रहे जो नूपरों से बच विरल
दास्तां उनकी भली—
पर नहीं वरदान कारागार के,
अवसान की इस बस्तियों के, फिर उठे अरमान सारे,
आकांक्षा के हाथ में, वह पारसी मन्त्र नहीं है ।
जिस तरह तुम प्रश्न बन कर जी रही हो ?
जान कर भी पास में, वसा अभी उत्तर नहीं है ।। □

कोंपल होकर प्रेम वक्ष की,
बेल बनू गा छा जाऊगा,
किन्तु उम्र ने इतनी उल्टी,
परिभाषाए मुझको दी कि—
प्रथ हीन विक्षिप्त शू य सा—
उनसे क्या कुछ मै पाऊगा ?
मैं पतझर का पगु-पल्लव
एकाकी या सिकुड गया हूँ ।...... कैसे साथ निभेगा स

मन पर काबू पा लेता तो,
इन होठो को सी लेता मैं ।
मेहनतकश मजदूरो भांति,
अपना जीवन जी लेता मैं ।
कम-धम को सोच समझ कर,
अपनी चादर तानी होती,
गम की सारी कडुवाहट को,
औरो भांति पी लेता मैं,
परिवतन के वक्र फेर से—
भौंडा या अब बिगड गया हू ।...... कैसे साथ निभेगा

शिकवा और शिकायत किससे,
निराकरण जब पास नही है ।
स्वाथ भरे व्यवहारी जग मे,
सच्चाई का वास नही है ॥
कुछ मतलब है इस धरती से
जिसके आचल में खोया हू—
नई सूझ के बढे कदम पर
मुझको तो विश्वास नहीं है,
दुख इतना है प्राण प्रेयसि—
अपने हाथो उजड गया हू ।
कैसे साथ निभेगा सजनी,
मैं सगत म पिछड गया हू ? □

उत्तर नहीं है

जिस तरह तुम प्रश्न बन कर जी रही हो ?
जानकर भी पास मे, वैसा अभी उत्तर नहीं है ॥

युग को जिलाने के लिये,
जब तब हुई हो याचिका मैं जानता हू ।
मानवी कमजोरिया
जो कि मैने दी तुम्हे वे मानता हू,
दर्द की हर टीस ढोने के लिये—
सम्बल लिया विश्वास का,
मैं उजाले छोर से—
हर महक को विस्तारता हू ।
भटकते परिवेश मुझको हरते हैं जिस ठिकाने—
कैसे रहू मैं ? पास नव अनुमान की चादर नही है ।
जिस तरह तुम प्रश्न बन कर जीरही हो—
जान कर भी पास म वसा अभी उत्तर नही है ॥

जगमगाती जिन्दगी म
जो दुमा करते सितारे,
वो भला क्या हो सके विस्तार के ?
लक्ष्य से गाफिल जगत के भीड में
भूमते हैं पस सदा अधियारे के ॥
सस्वर रहे जो नूपरों से वद विरल
दास्तां उनकी भली—
पर नहीं वरदान कारागार के,
अवसान की इस बस्तियो के, फिर उठे अरमान सारे,
आकांक्षा के हाथ में, वह पारसी मन्त्र नहीं है ।
जिस तरह तुम प्रश्न बन कर जो रही हो ?
जान कर भी पास म वसा अभी उत्तर नहीं है ॥ □

कोंपल होकर प्रेम वक्ष की,
बेल बनूगा छा जाऊगा,
किन्तु उम्र ने इतनी उल्टी,
परिभाषाए मुझको दी कि—
प्रथ हीन विक्षिप्त शू य सा—
उनसे क्या कुछ मैं पाऊगा ?
मैं पतझर का पगु-पल्लव
एकाकी या सिकुड गया हूँ ।...... कैसे साथ निभेगा सजनी ?

मन पर काबू पा लेता तो,
इन होठो को सी लेता मैं ।
मेहनतकश मजदूरो भांति,
अपना जीवन जी लेता मैं ।
कम घम को सोच समझ कर,
अपनी चादर तानी होती,
गम की सारी कडुवाहट को,
औरो भांति पी लेता मैं,
परिवतन के वक्र फेर से—
औंधा या अब बिगड गया हू ।......कसे साथ निभेगा सजनी

शिकवा और शिकायत किससे,
निराकरण जब पास नही है ।
स्वाथ भरे व्यवहारी जग मे,
सच्चाई का वास नही है ।।
कुछ मतलब है इस धरती से
जिसके आचल मे खोया हू—
नई सूझ के बढ़े कदम पर
मुझको तो विश्वास नहीं है,
दुख इतना है प्राण प्रेयसि—
अपने हाथो उजड गया हू ।
कैसे साथ निभेगा सजनी,
मैं सगत म पिछड गया हू ? ☐

उत्तर नहीं है

जिस तरह तुम प्रश्न बन कर जो रही हो ?
जानकर भी पास में, वैसा अभी उत्तर नहीं है ॥

युग को जिलाने के लिये,
जब तब हुई हो याचिका मैं जानता हू ।
मानवी कमजोरियां
जो कि मैंने दी तुम्हें, वे मानता हू,
दर्द की हर टीस धोने के लिये—
सम्बल लिया विश्वास का,
मैं उजाले छोर से—
हर महक को विस्तारता हू ।
भटकते परिवेश मुझको हेरते हैं जिस ठिकाने—
कहे रहू मैं ? पास नव अनुमान की चादर नहीं है ।
जिस तरह तुम प्रश्न बन कर जीरही हो—
जान कर भी पास म वसा अभी उत्तर नहीं है ॥

जगमगाती जिन्दगी मे
जो दुआ करते सितारे,
वो भला क्या हो सके विस्तार के ?
सत्य से गाफिल जगत मे नीड में,
झूमते हैं पक्ष सदा अधियारे के ॥
सस्वर रहे जो नूपरों से बध विरल
दासता उनको भली—
पर नहीं वरदान कारागार के,
अवसान की इस बस्तियों के, फिर उठे अरमान सारे,
आकांक्षा के हाथ में वह पारसी मन्त्र नहीं है ।
जिस तरह तुम प्रश्न बन कर जी रही हो ?
जान कर भी पास में, वैसा अभी उत्तर नहीं है ॥ □

मतवाली दुल्हन

(आम चुनाव, १९६२)

किसे छलेगी और न जाने किन किन को ललचायेगी ?
जाने किसको 'मत की दुल्हन' वरमाला पहनाएगी ॥
इस चुनाव के स्वयंवर में सज धज दूल्हे आये हैं।
अपनी-अपनी बारातें ले गजब तमाशे लाये हैं ॥
कुछ ऐसे भी शाहजादे कि जिनके कोई साथ नहीं।
कुछ साथी मिल भी जाये लेकिन साथ कोई बारात नहीं ॥
त्रेता, द्वापर, सतयुग व कुछ कलयुग के अवतारी हैं।
सबके सब समझे बठे कि मेरा पलडा भारी है ॥
सब दूल्हों की शक्ति-परीक्षा होगी इसी स्वयंवर में।
पता चलेगा कौनसा दूल्हा आता पहले नम्बर म ॥
उसे छोड बाकी सबकी बारातें वापिस जायेंगी।
किसे छलेगी और न जाने किन किन को ललचायेगी ॥
जाने किसको 'मत की दुल्हन' वरमाला पहनाएगी ॥

'ऋषि राज' खडे हैं आगे जिनकी दाढी मूछें भी गहरी।

बोले ज्योंहि दुल्हनिया की दृष्टि उन पर आ ठहरी ॥
मैंने अपना तप खण्डित कर छोड़ी दीपों की टोली।
मुझे वरोगी तो 'तारों' से भर दूंगा तेरी झोली ॥
तो दूजा कहता तुमको पाने दिल्ली से नाता तोड़ा।
प्रेयसि तुमको पाने खातिर राजमहल मैंने छोड़ा ॥
इसीलिए तुम भी देवी ये फूल' मेरा स्वीकार करो।
'फूल' के बदल फूलों की ये माला पहना मुझे वरो ॥
जरा इधर मुड़ कर देखो 'साइकिल' बबई वाली है।
हजारों का दल है सवार पर आगे बढ़ने वाली है ॥
इसी बीच में 'घुड़सवार' भी चाबुक थामे खड़ा हुआ।
बोला मेरा घोड़ा भी सोने चांदी से जड़ा हुआ ॥
पल भर में ये पवन वेग से आसमान में उड़ सकता।
मुझे वरो मेरा घोड़ा हर एक दिशा में मुड़ सकता ॥
आगे दीपक राज कहे मैं गो माता का प्यारा हूं।
मैं धमराज हू कलयुग का इन सब दूल्हों से न्यारा हूं ॥
तुमको पाने के खातिर ये टिम टिम दीप जलाये बैठा।
मुझे वरो मेरी सज्जनी, मैं कब से आश लगाये बैठा ॥
बारात हीन इन मेहबूबों को देख-देख मुस्काती है।
नीची नजरें किये दुल्हनिया आगे बढ़ती जाती है ॥
इतने में इक बूढ़ा दो बैलों को ले आगे आया।
बोला तुम्हें रिझाने खातिर गजब तमाशा मैं लाया ॥
यूं कह ज्योंहि उसने दोनों बैलों को खुला छोड़ा।
न जाने क्या बात हुई कि एक दूसरे पर दौड़ा ॥
इस कदर भिड़े दोनों कि उनके सींग टूट कर चूर हुए।
तब राजकुमारी के पग आगे बढ़ने को मजबूर हुए ॥
आगे देखा वहीं द्वार पर सजी हुई सुन्दर डानी।
जिसके रक्षक के संग बैठी कुछ मतवालों की टोली ॥
रक्षक बोला मुझे वरो मैं जनबल का रखवाला हूँ।
मनजाना तो नहीं हूं तुमसे वही झोंपड़ी वाला हूं ॥
अब यह तो कहना मुश्किल है वह किसका साथ निभायेगी।
किसे छलेगी और न जाने किन-किन को ललचायेगी ॥
जाने किसको मत की दुल्हन' वरमाला पहनाएगी ॥

कैसा ये सुन्दर समाज है ?

अजनबियों की भीड़-भाड़ है,
व्यवहारों में मची राड़ है,
होड़ लगी है सुविधाओं की—
समाजवाद तो स्वप्न-ताड़ है,
कौन सुने किसको समझायें ?
कौन कबूतर कौन बाज है ?
कैसा ये सुंदर समाज है ?

अहसानों के गट्ठर ढोता,
चला काफिला हंसता रोता,
नई जिंदगी देने वाली—
नव पीढ़ी का आसन खोया,
बीत रही है क्या हम-सब में,
चुप्प सभी, कैसा रिवाज है ?
कैसा ये सुंदर समाज है ?

यह कैसा किसका प्रभाव है
गुड़ गोबर सब एक भाव है,
बकरी अपना दूध पी रही,
त्याग भरा उसका स्वभाव है;
उल्लू की आवाजों को हम,
कहते कोयल का मिजाज है।
कैसा ये सुंदर समाज है?

हुआ बहुत मानस का मंथन,
हुआ बहुत तत्वों का चिंतन,
अजामो में गरल मिले तो —
होता मोम कसौटि कुंदन,
भेद-भाव का भोंपू सिर पर,
कहते समता का सुराज है।
कैसा ये सुंदर समाज है?

फूल यहां पर गंध खो गई,
कुरबानी नीलाम हो गई,
दोष किसी को क्या देना है?
माप दण्ड की हवा सो गई
नाक न पाये जीवटता की,
उनके सिर आसीन ताज है।
कैसा ये सुंदर समाज है?

उत्तर सारे प्रश्न होगये,
साधक सारे अश्न होगये,
जब निबाह की आई बारी
दूल्हे सारे कृष्ण हो गये,
टूट चुकी हैं मर्यादाएं
फिर भी कहते राम-राज है।
कैसा ये सुंदर समाज है? □

किन्तु हमको जागना है भोर पाने के लिये

रात की ये कालिमा तो ज्ञान से धुल जायेगी,
किन्तु हमको जागना है भोर पाने के लिये।
इस जमीं पर गर निराला का पला है काव्य तो,
छन्द फिर आकार लें युग-बोध लाने के लिये।।

ओ सभी आलोचकों! विद्वान लायक लोचकों!!
आज तक बोलो तुम्हारी लेखनी ने क्या किया?

राष्ट्र में फैला न पाये पथ भाषा की मगर,
विश्व में हिन्दी चलाने का नया नाटक किया ?
है कहाँ वह प्रेमचन्द बोलो कहाँ है वह निराला,
शरत-दिनकर की प्रखरता आज क्यों कर मौन है ?
कितने नये टगौर-मुक्तिबोध आये इस धरा पर,
अज्ञेय जैसी साधनाएं आज क्यों कर गौण हैं ?
छोड दो झूठे मुलम्मे, पथ ग्रह करदो किनारे,
फिर तुम्हें सरजन बुलाता साथ मरने के लिये ।
रात की य कालिमा तो ज्ञान से धुल जायेगी,
किन्तु हमको जागना है भोर पाने के लिये ।।

टूट रहा इतिहास लुटती सभ्यता औ' संस्कृति,
भूख के विभिन्न चेहरों से प्रताडित आदमी,
दो कौर झूठन के लिये अस्मत जहाँ नगी लुटे—
औ इधर विलासिता का दौर होता लाजमी,
आगया है वक्त मेरे देश के जन गायकों ।
हास औ' परिहास हमको छोड़ना होगा,
लपलपाते काल का मुंह मोडने के वास्ते
बलिदान का अस्तित्व लेकर झांकना होगा,
सम्भव हमारे कंठ छलनी भी किये जायें मगर—
यो नया अध्याय होगा इस जमाने के लिये ।
रात को ये कालिमा तो ज्ञान से धुल जायेगी,
किन्तु हमको जागना है भोर पाने के लिये ।।

उमामर्शों तुमको बुलाते होठ पपियाते रुग्न के,

झुलसी हुई ये सूरतें तुमको पुकारे आरहीं,
इस विषम वातावरण की धुंध ये स्याही समेटो,
व्यूह विष के तोड़ने की चाहते दुलरा रहीं,
तप भरा अस्तित्व लेकर फिर उठें गर दोस्तों!
समझलो कि मुक्त होंगी बिलबिलाती पीढ़ियाँ,
पास की अंतर विरोधी भावनाएं छोड दो तो
समझलो निश्चित मिलेगी दूरगामी सीढ़ियाँ,
रोशनी के वाहको उठो कि सन्नाटा समेटो—
चेतना करती प्रतीक्षा जगमगाने के लिये।
रात की ये कालिमा तो ज्ञान से धुल जायेगी
किन्तु हमको जागना है भोर पाने के लिये॥

ये हुआ या वो हुआ कैसे हुआ क्यों कर हुआ?
इस बात को मस्तिष्क से बिल्कुल हटाना चाहिये,
पेट की इस आग को जो भी खिलौना मानते,
उनको कलम की नोक पर मेहमान रखना चाहिये,
भूल करके भेद के सारे गुणों को साथियों!
फिर कतारों में चलगा पथगामी काफिला,
उन शहीदों की तुम्हें सौगंध कि अवशेष जिनके—
इस जमीं से कह रहे हैं कि उठाओ जलजला,
चुप्पियों की चोंच तोड़ो, शोर को नूतन दिशा दो,
जागृति आकुल खड़ी है राह पाने के लिये।
रात की ये कालिमा तो, ज्ञान से धुल जायेगी,
किन्तु हमको जागना है भोर पाने के लिये॥
इस जमी पर गर निराला का पला है काव्य तो,
शब्द फिर आकार लें युग-बोध लाने के लिये॥ □

ज्ञान के उन्नायको से

ज्ञान की जो मांगते हैं कीमतें,
वो भलाई सत्य की क्या कर सकें ?
परछाइयों की परिधि से आबद्ध जो,
रोशनी का रूप कैसे धर सकें ?

ये नहीं कि गूढ़ चिंतन गौण है,
किंतु उसका सूक्ष्म मापन है कहां ?
अनुभूतियों में निहित सारी भावना

किंतु उसकी सूझ का अवन बहा ?
जिन चक्षुओं पर 'अय' के चश्मे चढ़े,
वो भला माकूल रंग क्या भर सकें ?
ज्ञान की जो मांगते हैं कीमतें,
वो भलाई सत्य की क्या कर सकें ?

झांकते जो जागृति के वहम से,
उन उजालों से सदा मय व्यापता
जब विजनता भीड़ में होती विलय,
समग्रता का रोम आकुल कांपता,
जो किसी भी राह तक पहुँचे नहीं
वो भला क्या मार्ग दर्शन कर सकें ?
ज्ञान की जो मांगते हैं कीमतें,
वो भलाई सत्य की क्या कर सकें ?

अध विकसित मानसों का फायदा,
जो कि उठाते आरहे अपने लिये
दर्शनों के नाम की झोली उठा
बांटते जो कवच स्व हित के लिये
रक्षा नहीं जो कर सके स्व भाव की,
वो दूसरों की आह कैसे हर सकें ?
ज्ञान की जो मांगते हैं कीमतें
वो भलाई सत्य की क्या कर सकें ?

हैं यहां ऐसे मसीहा जो सदा,
क्षय करें चिन्तन मनन आक्रोश को,
विश्वव्यापी सकटों की बात कर,
बांधते यथार्थ को, युग-बोध को,
वो भला औरों में फूकें प्राण क्या ?
बैसाखियों के बिन नहीं जो चल सकें ।
ज्ञान की जो मांगते हैं कीमतें
वो भलाई सत्य की क्या कर सकें ? □

लोकनायक जयप्रकाश नारायण के प्रति

तेरी उज्जवल निष्ठा से मन बंध जाती है नई आस।
जय जय जय जय जयप्रकाश !
जय जय जय जय जयप्रकाश !!

प्रबुद्ध ज्ञान के ओ प्रतीक !
ओ मानवता के दिव्य भाल,
स्वतन्त्रता के ओ त्यागी जन,
बलिदानी मानव विशाल
शुचि प्रेरक ! तुम में पलता है अहम्‌हीन विश्वास—जय जय...

दूर दम्भ से, आडम्बर से,
जग लिप्सा से रहा विलग,
शान्ति-दूत ! मां के सपूत,
तू पीड़ित जन हित रहा सजग,
पाषाणों को तू पिघलाए कीर्तिमान तेरा प्रयास—जय जय

कौन प्रशस्ति-पत्र तुम्हारी—
भाषा का करता अंकन
स्वत्व दिया तुमने समाज को,
किया नहीं कुछ भी अर्जन
सत्यपुञ्ज ! तेरी वाणी से गरिमा० करती विकास—जय जय...

सर्वोदय की अमर ज्योति के,
ओ हामी तुमको प्रणाम
युग युग जीओ ओ महामानव,
मृत्युञ्जय बन कर ललाम,
ओ नवजीवन ! तू ने मेरे भारत के सन्नास।
जय जय जय जय जयप्रकाश ।।
जय जय जय जय जयप्रकाश ।। □

बोलो कब घबराये ?

दिन की कड़ी धूप में रह कर,
जो मुस्काते आये,
वे रातों के अंधियारों से
बोलो कब घबराये ?

विष औ' विपदा में जीते जो,
धर्ममयी श्रृंगार लिये,
नयनों में बांकापन किन्तु,
आंसू जिनके रहे हिये,
खुद मटमली चादर ओढ़े,
शाल दुशाले जो देते,
जीवन को संग्राम समझने
वाले किससे क्या लेते ?
जिनकी गूंगी वाणी लख कर—
नियति तक सिहराये ।

वे राता के अंधियारों से
बोलो कब घबराये ?

जो विकास के चरण,
वेदना जिनकी अति अनूठी,
जिनके हाथों से श्री बहती,
किंतु पास लगोटी,
जिनकी चाहो की घाटी से,
गुजरे हैं तूफान कई,
जिनकी चुप्पी म पलते हैं,
आदि औ' अवसान कई,
प्राणों मे जिनके शुचिताई
वे क्यों कर सकुचाय ?
वे रातो के अंधियारो से
बोलो कब घबराये ?

श्रम की जो तामीर उठाए,
अपने खून-पसाने से,
जिन्होंने सच को देखा है,
मेहनत के तकमीने से,
ओ राहगीर ! तू देख इन्हें,
बस देखे जा कुछ भी मत कह,
इनकी बस्ती में संस्कृतियां,
एक अनोखी गाथा यह
दो अक्षर भी इतिहासों ने,
जिन-हित नहीं जुटाये।
वे रातों के अंधियारों से,
बोलो कब घबराये ॥
दिन की कड़ी धूप में रह कर,
जो मुस्काते आये।
वे रातों के अंधियारों से
बोलो कब घबराये ? □

वो भी लगता आज पराया

द्वन्द्व भरी व्याकुल सतहों पर
मैंने अपना कूजन पाया,
कहीं किसी ने अपनापन दे,
जाने क्यो मुझको झुठलाया,
कौन कहे दिल खोल हमारी गाथा क्योंकि
तिमिराच्छन्न धरा पर मैंने,

अपनों की आखों से श्रोमल,
रह कर भी जो जले निरंतर।
ऐसा दीप सजोया केवल,
वो भी लगता आज पराया।

इस धरती के आगन में तो—
कितने ही आदर्श पले हैं,
साधन-पथ की वेदी ऊपर,
कितने ही आहूत जले हैं,
मूल्यांकन कर उनका मैंने—
तप की कीमत बड़ी समझ कर,
साध साध कर जीवटता को,
बस जीवन को जी भर देने—
निश्वासों म री भर लेने,
रहने को जो स्वर्ग बनाया,
वो भी लगता आज पराया॥

यहा भेद की दृष्टि पनपती,
संदेहों की भीड लगी है
मानस स्वस्थ नहीं हो पाया,
अहम् अहम् की होड लगी है,
कहीं शक्ति का प्रबल दिखावा—
उपदेशों की चादर मोटी,
इन सबसे बच बच के मैंने —
बस यथार्थ की पौध उठाने—
या उसकी तरूणाई खातिर—
आशा का अम्बार लगाया,
वो भी लगता आज पराया॥

जग लगे जिस सत्य द्वार को
योगी-त्यागी खोल न पाय
ईमानों के फल चख कर भी,

चलने वाले बाल न पाये,
मल धारा से जग-प्रवाह में,
अपनी अपनी साक सवारे,
बहने को सब ही बहते हैं,
जाने कबसे पता नहीं है—
आजादी से बहने मैंने—
अब तक जो असबाब जुटाया,
वो भी लगता आज पराया ॥

कहीं हुवाई निष्कर्पों को,
उच्च मान कर पूजा जाता,
सांस सांस पर इधर आदमी
संघर्षों से जूझा जाता,
कमहीन कमठ से ऊंचे
जड़-बुद्धि ज्ञानी से बढ कर—
जब देखा तो अनुभव चुप था,
युक्ति जैसे भाग खागई,
बची-खुची निष्ठा को रखने
मैंने जो मधुमास सजाया।
वो भी लगता आज पराया ॥

क्या पाना है क्या है खोना
ये तो सारे सन्त कह गये,
जाने या कि अनजाने में—
कितने सत-विश्वास सो गये ?
हरे-भरे मंदिर लाखों हैं,
और अनेकों गिर्जाघर हैं,
अनगिनत मस्जिदों की दुनिया में,
नये नये भगवान हो गये,
पर आदम की देख दुदशा,
मैंने जो विश्वास जगाया,
वो भी लगता आज पराया ॥ □

पणिहारी

सोनलिये सूरज री किरण्या भाई जगावण ने ।
हालो पाणी ल्यावण ने, चालो पाणी ल्यावण ने ॥

पल पलेरू कुरळावे आभ में राती बादळी
खोलण लागी रातल्ली तारा नग पोई मादळी,
लाल-लजोली पौ पाटी जद लागी मोटण न । हालो—

हरया भरया है झाड झाखरा, मरगी ताळ-तळाई जी
पाणी भरबा जावण दो, मत पकडो पियू कळाई जी,
सहल्या म्हारी बार ऊभी, सागे चालण ने । हालो

झामो झूमे हेठे धरती गीत प्रीत रा गाव जी,
बासुरी बजाय र बायरो, जी बिलमावण ने । हालो

लू ब–लू बाळी ँ ढाणी धरे ज्यों च ा री कोर जी,
पणिहारी रा बेश उडे जाणे सावणिय रा लोर जी,
सरवर चाली गोरडी, पियू हळियो बावण ने । हालो

नखली स्यू पगिया सजियोडा, मैंदी रचिया हाथ जी
बिन्दिया रे मिस चादडलो चूमे गोरी रो माथ जी,
बाजु–ब ध री लडिया जट–पट लागी लटकण ने । हालो

घाघरिये री लड मे बैरे घुम्मर घाले मोरियो,
लाल कसूबल ओढणो बरो कुण जाणे कुण कारियो
हाथिण ज्यू मतवाळी चाल्या लागी चालण ने । हालो

चचल नण चकोरी रा जद घूघट म शरमावे जी,
काजळिये री कार बेवता रा हिवडा भरमावे जी
रुन–भुन पग री पायलिया जद लागी बाजण ने । हालो

ताळ–तळया मावे गाया–गोरवा री भरमार जी
ऊठ बकरडी घोडा सागे छागा रो परिवार जी
ठडी मद री लहरा चाने जो ललचावण ने । हालो

ठाली मटकी मेल सुगनडी छेडी घर री बात जी,
पियु गयो परदेश हा साथिण कीकर काटू रात जी
नणा स्यू म्हारे नीर झरे इये मरिये सावण मे । हालो

थाम पगा रे बीच घाघरो, पाणीड पग धरियो जी,
हवा वरणे गळने स्यू जद छाण्यो पाणी भरियो जी,
ओन्णिय री उडतो पल्लो, लागो भीजण ने । हालो

हाडा, मटकी, चुकली, चाडा तिरमिर भरिया गोरड्या,
घूघट रे पल्ला स्यू भाक'र देवण लागी छोरड्या,
सुणो सहेल्यां देर करो मत चूडा माजण मे । हालो

ठडे म ठे पाणीडे री, रिळ-मिळ उखणी गागरी
गडसीसर स्यू घरिये चाली जैसाणे री नागरी,
छल-छल छलके मटकी माथे रस बरसावण ने । हालो

पीळो हाडो लाल ओन्णो बादळिये ज्यू वेश जी,
हरयो घाघरो, सात सुरगो पणिहारी रो भेश जी,
चाली गोरी इन्द्रधनुष री रेख सजावण ने । हालो

ए पद्मिणिया पूगळ री, ब बीकाणे र गाव री
ठुमक-ठुमक पाणीडो लावे जोधाणे री सावरी,
पतली कमर बारी लचकण लागी, हिय हरखावण ने । हालो

नखरा मत जोइज रूपा पिणघट वैलो नार रा,
ना गाईजो गीत 'बावरा घोरां री पणिहार रा,
मारग ने मत रोक भवर जी, हत लगावण ने । हालो

सोनलिये सूरज री किरण्या आई जगावण ने ।
हालो पाणी ल्यावण ने चालो पाणी ल्यावण ने ॥ ☐

कोई मन भरमावे रे

या गावडले री बात बावळा चमक चांदणी रात,
काई गीतडलो गावे रे, कोई मन भरमावे रे।

कुहक-कुहक काई कायर तेव खीनी काढर,
भरिया खेळी कोठा माथे, छागर लाडे र,

पाव ऊठ बकरन्‍ी गाय, गोइ दो गाडीणा ले जाय,
लुगाया लाखो गावे रे, कोई मन भरमावे रे ।—भ्रा गावडले री

सावणिये रा लोर गरजता पाणी लावे रे,
कोयरिये ने बिसर मानखो खेता जावे रे,
जद घुम्मर घाले मोर, थामले बलघा री कुण डोर,
धरा सोनो निपजावे रे, कोई मन भरमावे रे।—भ्रा गावडले री

ऊची ताण मचाण गोफणी बावे हाळी रे,
बाडां सिगली छाप करे खेती रुखवाळी रे,
पिउजी छाछ राबडी खाय, गोरडी मन ही मन मुळकाय,
घूघट में शरमावे रे, कोई मन भरमावे रे ।—भ्रा गावडले री

गहू-मू ग-तिल बाजरी रा पकग्या सिट्टा रे
खावण लाग्या काचर बोर मतीरा मीठा रे,
पळी जद मक्की, मोठडी, ज्वार, गोरडी कर सोळै शृङ्गार
खेत भातो ले जाव रे, कोई मन भरमावे रे ।—भ्रा गावडले री

धान भर्‌यां धारयां न देख, टाबरिया नाचे रे
धमस गळडी दल गोरडी मिनी रावे रे
चांद तारों री ऊपर बेल धरा चामे रपू कर रही खेल,
बावरो जी बिलमाव रे—कोई मन भरमाव रे ।

भ्रा गांवडले री बात, बाथला चमक चादणी रात
कोई लोनड़लो गाव रे कोई मन भरमावे रे । □

फागण आयो रे

भूम गावतो, श्रो मदमातो, महिणो आयो रे ।
रग उडातो, फाग खेलतो फागण आयो रे ।।

उन्मादी बायरियो छेडे बासुरिया री तान
छल-छबीली आ अलबेली पून चलावे बाण,
मिनख मतवाळा नाचे रे
आ धरती मैंदी राचे रे,
आज जमीं रे हाथा आभे गाल रगायो रे । झूम गावतो

कर सोळै सिणगार रितु अब खेलण लागी फाग,
सगळो रे माथा पर सोवै फूल गुलाबी पाग,
दिशावा झूमे गावे रे
लुगाया मन भरमाव रे,
आज प्यार रे पनघट माथै मेळो मचग्यो रे । झूम गावतो

तबला देवे ताल मदिरा माथ छिडी मिरदग,
पडे डाडिया, गळी गळी मे गू जण लागी चग,
लावणी चौमासे रा गीत,
सुरीलो सरगम रो सगीत,
आज बहारा रे पग रुन-मुन घु घरू बाज्यो रे । झूम गावतो

रग सुरगी सडक्या माथ उड रह्यो लाल गुलाल,
गोखे बठी गोरडी रा मत पूछो थे हाल,
नेण री नैण्या स्यू है बात,
ऊपर स्यू इमरत री बरसात,
कजरारी आख्या रो काजळ ठुमकण लाग्यो रे । झूम गावतो

रम्ते बे'ही राधा आगे रुकग्यो मोहनियो,
रग मती नाखे छैल-भवर म्हारो मीजै मोडणियो,
सास म्हून ताना मारेला,
बा बैरण बुरी बिचारेला,
मारग ने दे छोड़ आभे स्यू सूरज ढल रह्यो रे। झूम गावतो

हिय हरखाते हड़ाऊजी स्यू सज रह्यो बार गुवाड़,
ढागा-बिस्सा बीने थामी नौटकी री नाड़,
होय रह्यी रमत्या री भरमार,
अमरसिंह थाम रह्यो तलवार,
अचारजां में हाडी नूमों अलख जगायो रे। झूम गावतो

चारू फेरी नव रस घुल रह्यो तिरमिर भरघा कढाव,
बीकाणे री बस्ती रे आणे भरसाणे रो गाव,
छूट रह्यो पिचकारघा स्यू रग,
झोलझ्यां स्यू छायो नवरग,
हरषों-च्यासों रो दिल भीज्यो नेह बढायो रे। झूम गावतो

दम्माण्यां में स गेवारया खेले रिळ-मिळ सेल,
रग उडाता, घूम मचाता, कर रह्या ठेलमठेल,
बहु दिस खुसियां है भरपूर
'बावरा' सैन नशे में चूर,
मन रा मोती पोय सायां रो मन ललचायो रे।
झूम गावतो, श्रो मदमातो, महिणो आयो रे॥
रग उडातो, फाग खेलतो, फागण आयो रे॥ □

राग्या रास रचावे

राग्या रास रचावे, धरती आभेस्यू शरमावे,
फागण रग भर लायो रे।

दूल्हो बण आयो मतवाळो होळी रो त्योहार
घूंघट रे उडते पल्ले स्यूं पून करे मनुहार,
आज बधो मौसम रे माथे लाल कसूम्बल पाग,
गेरया पग ठुमकावे सिगळा रिळ-मिळ मोद मनावे,
जौहर घिर घिर आया रे। राग्या रास

पडे डाडिया बजे नगाडा, ऊपर उतरी फाग,
म्हारे मन रे मानसरोवर छिडी बावळी आग,
आज हंस चुग चुग पोवेला मोतीडा री माळ
पंकु थाल सजावे, सुगनी नण्या स्यूं दरसावे
ढोला रग सवायो रे। राग्या रास

रूपमत्या रा चेहरा चमके लाल चूनडी माथ,
सिन्दूरी मैंदी हाथा री मोटयारां ने माथ,
उठता हिवडा री माईडा ऊंचो चढसी गढ,
सायीडा मदमाव गोरया रातो रग बरसावे,
बेळा शख बजायो रे। राग्या रास

रूप पसीजे रूपाळयों रो नणा उमडी प्रीत
गेवरिया रे हिवडे छायो सारगे रो गीत
मौसम धूम मचावे, रात्या रसिया स्यूं बध जावे,
होली तिलक लगायो रे।
राग्या रास रचावे, धरती आभेस्यू शरमावे,
फागण रग भरी लायो रे।। राग्या रास

□